

अपभ्रंश साहित्य में कृष्णकाव्य

□ डॉ० हरिवल्लभ चुन्नीलाल भायाणी,

लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्या मन्दिर, अहमदाबाद (गुजरात)

अपभ्रंश साहित्य में कृष्ण विषयक रचनाओं का स्वरूप, इयत्ता, प्रकार और महत्त्व कैसा था यह समझने के लिए सबसे पहले उस साहित्य से सम्बन्धित कुछ सर्वसाधारण और प्रास्ताविक तथ्यों पर लक्ष्य देना आवश्यक होगा।

समय की दृष्टि से अपभ्रंश साहित्य छठवीं शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी तक पनपा और बाद में भी उसका प्रवाह क्षीण होता हुआ भी चार सौ पाँच सौ वर्ष तक बहता रहा। इतने दीर्घ समयपट पर फैले हुए साहित्य की हमारी जानकारी कई कारणों से अत्यन्त त्रुटित है।

पहली बात तो यह कि नवीं शताब्दी के पूर्व की एक भी अपभ्रंश कृति अब तक हमें हस्तगत नहीं हुई है। तीन सौ साल का प्रारम्भिक कालखण्ड सारा का सारा अन्धकार से आवृत सा है और बाद के समय में भी दसवीं शताब्दी तक की कृतियों में से बहुत स्वल्प संख्या उपलब्ध है।

दूसरा यह कि अपभ्रंश की कई एक लाक्षणिक साहित्यिक विधाओं की एकाध ही कृति बची है और वह भी ठीक उत्तरकालीन है। ऐसी पूर्वकालीन कृतियों के नाममात्र से भी हम वंचित हैं। इससे, अपभ्रंश के प्राचीन साहित्य का चित्र काफी घुँघला और कई स्थलों पर तो बिल्कुल कोरा है।

तीसरा यह कि अपभ्रंश का बचा हुआ साहित्य अधिकतर धार्मिक साहित्य है और वह भी स्वल्प अपवादों के सिवा केवल जैन साहित्य है। जैनैतर—हिन्दू एवं बौद्ध—साहित्य की और शुद्ध साहित्य की केवल दो-तीन रचनाएँ मिली हैं। इस तरह प्राप्त अपभ्रंश साहित्य जैन-प्राय है और इस बात का श्रेय जैनियों की ग्रन्थ-सुरक्षा की व्यवस्थित पद्धति को देना चाहिए। मगर ऐसी परिस्थिति के फलस्वरूप अपभ्रंश साहित्य का चित्र और भी खण्डित एवं एकांगी बनता है।

इस मिलसिले में एक और अधिक बात का भी निर्देश करना होगा। जो कुछ अपभ्रंश साहित्य बच गया है उसमें से भी बहुत छोटा अंश अब तक प्रकाशित हो सकता है। बहुत सी कृतियाँ भाण्डारों में हस्त प्रतियों के ही रूप में होने से असुलभ हैं।

इन सबके कारण अपभ्रंश साहित्य के कोई एकाध अंग या पहलू का भी वृत्तान्त तैयार करने में अनेक कठिनाइयाँ सामने आती हैं और फलस्वरूप वह वृत्तान्त अपूर्ण एवं त्रुटक रूप में ही प्रस्तुत किया जा सकता है।

यह तो हुई सर्वसाधारण अपभ्रंश साहित्य की बात। किन्तु यहाँ हमारा सीधा नाता कृष्णकाव्यों के साथ है। अतः हम उसकी बात लेकर चलें।

भारतीय साहित्य के इतिहास की दृष्टि से जो अपभ्रंश का उत्कर्षकाल है वही है कृष्णकाव्य का मध्याह्नकाल। संस्कृत एवं प्राकृत में इसी कालखण्ड में पौराणिक और काव्यसाहित्य की अनेकानेक कृष्णविषयक रचनाएँ हुईं। हरिवंश, विष्णुपुराण, भागवतपुराण आदि की कृष्णकथाओं ने तत्कालीन साहित्य रचनाओं के लिए एक अक्षय मूलस्रोत का काम किया है। विषय, शैली आदि की दृष्टि से अपभ्रंश साहित्य पर संस्कृत-प्राकृत साहित्य का प्रभाव गहरा एवं



लगातार रहा था। अतः अपभ्रंश साहित्य में भी कृष्णविषयक रचनाओं की दीर्घ और व्यापक परम्परा का स्थापित होना अत्यन्त सहज था। किन्तु उपरिर्वाणित परिस्थिति के कारण हमें न तो प्राप्त है अपभ्रंश का एक भी शुद्ध कृष्ण-काव्य, और न हमें प्राप्त है एक भी जैनैतर कृष्णकाव्य। जैन परम्परा की जो रचनाएँ मिलती हैं वे भी बहुत कर के अन्य बृहत् पौराणिक रचनाओं के एकदेश के रूप में मिलती हैं। इतना ही नहीं उनमें से अधिकांश कृतियाँ अब तक अप्रकाशित हैं। इसका अर्थ यह नहीं होता कि अपभ्रंश का उक्त कृष्णसाहित्य काव्य गुणों से वंचित है। फिर भी इतना तो अवश्य है कि कृष्णकथा जैन साहित्य का अंश रहने से तज्जन्य मर्यादाओं से वह बाधित है।

जैन कृष्णकथा का स्वरूप

वैदिक परम्परा की तरह जैन परम्परा में भी कृष्णचरित्र पुराणकथाओं का ही एक अंश था। जैन कृष्णचरित्र वैदिक परम्परा के कृष्णचरित्र का ही सम्प्रदायानुकूल रूपान्तर था। यही परिस्थिति रामकथा आदि कई अन्य पुराण-कथाओं के बारे में भी है। जैन परम्परा इतर परम्परा के मान्य कथास्वरूप में व्यावहारिक दृष्टि से एवं तर्कबुद्धि की दृष्टि से असंगतियाँ बताकर उसे मिथ्या कहती है और उससे भिन्न स्वरूप की कथा जिसे वह सही समझती है उसको वह प्रस्तुत करती है। तथापि जहाँ-जहाँ तक सभी मुख्य पात्रों का, मुख्य घटनाओं का और उनके क्रमादि का सम्बन्ध है वहाँ सर्वत्र जैन परम्परा ने हिन्दू परम्परा का ही अनुसरण किया है।

जैन कृष्णकथा में भी मुख्य-मुख्य प्रसंग, उनके क्रम एवं पात्र के स्वरूप आदि दीर्घकालीन परम्परा से नियत थे। अतः जहाँ तक कथानक का सम्बन्ध है जैन कृष्णकथा पर आधारित विभिन्न कृतियों में परिवर्तनों के लिए स्वल्प अवकाश रहता था। फिर भी कुछ छोटी-मोटी तफसीलों के विषय में, कार्यों के प्रवृत्ति नियमों के विषय में एवं निरूपण की इयत्ता के विषय में एक कृति और दूसरी कृति के बीच पर्याप्त मात्रा में अन्तर रहता था। दिगम्बर और श्वेताम्बर परम्परा के कृष्णचरित्रों की भी अपनी-अपनी विशिष्टताएँ हैं। और उनमें से कोई एक रूपान्तर के अनुसरणकर्ताओं में भी आपस में कुछ भिन्नता देखी जाती है। मूल कथानक को कुछ विषयों में सम्प्रदायानुकूल करने के लिए कोई सर्वमान्य प्रणालिका के अभाव में जैन रचनाकारों ने अपने-अपने मार्ग लिये हैं।

जैन कृष्णचरित्र के अनुसार कृष्ण न तो कोई दिव्य पुरुष थे, न तो ईश्वर के अवतार या 'भगवान स्वयं'। वे मानव ही थे हालांकि एक असामान्य शक्तिशाली वीरपुरुष एवं सम्राट थे। जैन पुराणकथा के अनुसार प्रस्तुत काल-खण्ड में तिरसठ महापुरुष या शलाका-पुरुष हो गए। चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नौ वासुदेव (या नारायण), नौ बलदेव और नौ प्रतिवासुदेव। वासुदेवों की समृद्धि, सामर्थ्य एवं पदवी चक्रवर्तियों से आधी होती थी। प्रत्येक वासुदेव तीन खण्ड पर शासन चलाता था। वह अपने प्रतिवासुदेव का युद्ध में संहार करके वासुदेवत्व प्राप्त करता था और इस कार्य में प्रत्येक बलदेव उसका साहाय्य करता था। राम, लक्ष्मण और रावण क्रमशः आठवें बलदेव, वासुदेव और प्रतिवासुदेव थे। नवीं त्रिपुटी थी कृष्ण, बलराम और जरासन्ध।

तिरसठ महापुरुषों के चरित्रों को ग्रथित करने वाली रचनाओं को 'त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र' या त्रिषष्टि-महर्षिपुरुषचरित्र' ऐसा नाम दिया जाता था। जब नौ प्रतिवासुदेवों की गिनती नहीं की जाती थी तब ऐसी रचना 'चतुष्पंचाशत्महापुरुषचरित्र' कहलाती थी। दिगम्बर परम्परा में उनको 'महापुराण' भी कहा जाता था। महापुराण में दो भाग होते थे—आदिपुराण और उत्तरपुराण। आदिपुराण में प्रथम तीर्थंकर और प्रथम चक्रवर्ती के चरित्र दिये जाते थे। उत्तरपुराण में शेष महापुरुषों के चरित्र।

सभी महापुरुषों के चरित्रों का निरूपण करने वाली ऐसी रचनाओं के अलावा कोई एक तीर्थंकर, वासुदेव आदि के चरित्र को लेकर भी रची जाती थीं। ऐसी रचनाएँ 'पुराण' नाम से ख्यात थीं। वासुदेव का चरित्र तीर्थंकर अरिष्टनेमि के चरित्र के साथ संलग्न था। उनके चरित्रों को लेकर की गयी रचनाएँ 'हरिवंश' या 'अरिष्टनेमिपुराण' के नाम से ज्ञात हैं।

जहाँ कृष्ण वामुदेव और बलराम की कथा स्वतन्त्र रूप से प्राप्त है वहाँ भी वह एकाधिक कथाओं के संलग्न तो रहती थी ही। जैन कृष्णकथा नियम से ही अल्पाधिक मात्रा में अन्य तीन-चार विभिन्न कथासूत्रों के साथ गुम्फित रहती थी। एक कथासूत्र होता था कृष्णपिता वसुदेव के परिभ्रमण की कथा; दूसरा, बाईसवें तीर्थंकर अरिष्टनेमि का चरित्र; तीसरा कथासूत्र होता था पाण्डवों का चरित्र। इनके अतिरिक्त मुख्य-मुख्य पात्रों के भवान्तरों की कथाएँ भी दी जाती थीं। वसुदेव ने एक सौ बरस तक विविध देशों में परिभ्रमण कर के अनेकानेक मानव और विद्याधर-कन्याएँ प्राप्त की थीं—उसकी रसिक कथा 'वसुदेवहण्डि' के नाम से जैन परम्परा में प्रचलित थी। वास्तव में वह गुणाढ्य की लुप्त 'बृहत्कथा' का ही जैन-रूपान्तर था। कृष्णकथा के प्रारम्भ में वसुदेव का वंशवर्णन और चरित्र आता है। वहीं पर वसुदेव की परिभ्रमणकथा भी छोटे-मोटे रूप में दी जाती थी।

अरिष्टनेमि कृष्ण वामुदेव के चचेरे भाई थे। बाईसवें तीर्थंकर होने से उनका चरित्र जैनधर्मियों के लिए सर्वाधिक महत्त्व रखता है। अतः अनेक बार कृष्णचरित्र नेमिचरित्र के एकदेश के रूप में मिलता है। इनके अलावा पाण्डवों के साथ एवं पाण्डव-कौरव युद्ध के साथ कृष्ण का घनिष्ठ सम्बन्ध होने से कृष्ण के उत्तरचरित्र के साथ महाभारत की कथा भी ग्रथित होती थी। फलस्वरूप ऐसी रचनाओं का 'जैन महाभारत' ऐसा भी एक नाम प्रचलित था। इस प्रकार सामान्यतः जिस अंश को प्राधान्य दिया गया हो उसके अनुसार कृष्णचरित्र विषयक रचनाओं को 'अरिष्टनेमिचरित्र' (या नेमिपुराण), 'हरिवंश', 'पाण्डवपुराण', 'जैन महाभारत' आदि नाम दिये जाते थे। किन्तु इस विषय में सर्वत्र एकवाक्यता नहीं है। अमुक विशिष्ट अंश को समान प्राधान्य देने वाली कृतियों के भिन्न-भिन्न नाम भी मिलते हैं। जैसे कि आरम्भ में सूचित किया था, जैन पुराणकथाओं का स्वरूप पर्याप्त मात्रा में रूढ़िबद्ध एवं परम्परानियत था। दूसरी ओर अपभ्रंश कृतियों में भी विषय, वस्तु आदि में संस्कृत प्राकृत की पूर्व-प्रचलित रचनाओं का अनुसरण होता था। इसलिए यहाँ पर अपभ्रंश कृष्णकाव्य का विवरण एवं आलोचना प्रस्तुत करने के पहले जैन परम्परा से मान्य कृष्णकथा की एक सर्वसाधारण रूपरेखा प्रस्तुत करना आवश्यक होगा। इससे उत्तरवर्ती आलोचना आदि के लिए आवश्यक सन्दर्भ सुलभ हो जायेगा। नीचे दो गयी रूपरेखा सन् ७८४ में रचित दिगम्बराचार्य जिनसेन के संस्कृत 'हरिवंशपुराण' के मुख्यतः ३३, ३४, ३५, ३६, ४० और ४९ इन सर्गों पर आधारित है। श्वेताम्बरचार्य हेमचन्द्र के सन् ११६५ के करीब रचे हुए संस्कृत 'त्रिषष्टिशलाका-पुरुषचरित्र, के आठवें पर्व में भी सविस्तार कृष्णचरित्र है। जिनसेन के वृत्तान्त से हेमचन्द्र का वृत्तान्त कुछ भेद रखता है। कुछ महत्त्व की विभिन्नताएँ पाद-टिप्पणियों में सूचित की गयी है। ('हरिवंशपुराण' का संकेत—हपु. और 'त्रिषष्टिशलाका-पुरुषचरित्र' का संकेत 'त्रिषष्टि०' रखा है।) कृष्णचरित्र अत्यन्त विस्तृत होने से यहाँ पर उसकी सर्वांगीण समालोचना करना सम्भव नहीं है। जैन कृष्णचरित्र के स्पष्ट रूप से दो भाग किये जा सकते हैं। कृष्ण और यादवों के द्वारावती प्रवेश तक एक भाग और शेष चरित्र का दूसरा भाग। पूर्वभाग में कृष्ण जितने केन्द्रवर्ती है उतने उत्तरभाग में नहीं है। इसलिए निम्न रूपरेखा पूर्वकृष्णचरित्र तक सीमित की गयी है।

जैन कृष्णकथा की रूपरेखा

हरिवंश में, जो कि हरिराजा से शुरू हुआ था, कालक्रम से मथुरा में यदु नामक राजा हुआ। उसके नाम से उसके वंशज यादव कहलाए। यदु का पुत्र नरपति हुआ और नरपति के पृत्र शूर और सुवीर। सुवीर को मथुरा का राज्य देकर शूर ने कुशद्य देश में शौर्यपुर बताया। शूर के अन्धकवृष्णि आदि पुत्र हुए और सुवीर के भोजकवृष्णि आदि। अन्धकवृष्णि के दश पुत्र हुए उनमें सबसे बड़ा समुद्रविजय और सबसे छोटा वसुदेव था। ये सब दशार्ह नाम से ख्यात हुए। कुन्ती और माद्री ये दो अन्धकवृष्णि की पुत्रियाँ थीं। भोजकवृष्णि के उग्रसेन आदि पुत्र थे। क्रम से शौर्यपुर के सिंहासन पर समुद्रविजय और मथुरा के सिंहासन पर उग्रसेन आरूढ़ हुए।

अतिशय सौन्दर्य युक्त वसुदेव से मन्त्रमुग्ध होकर नगर की स्त्रियाँ अपने घरबार की उपेक्षा करने लगीं। नागरिकों की शिकायत से समुद्रविजय ने युक्तिपूर्वक वसुदेव के घर से बाहर निकलने पर नियन्त्रण लगा दिया। वसुदेव को एक दिन आकस्मात् इसका पता लग गया। उसने प्रच्छन्न रूप से नगर छोड़ दिया। जाते-जाते



उसने लोगों में ऐसी बात फैलाई कि वसुदेव ने अग्निप्रवेश करके आत्महत्या कर ली। बाद में वह कई देशों में भ्रमण करके और मानव-कन्याएँ एवं विद्याधर-कन्याएँ प्राप्त करके एक सौ वर्ष के बाद अरिष्टपुर की राजकुमारी रोहिणी के स्वयंवर में आ पहुँचा। रोहिणी ने उसका वरण किया। वहाँ आए समुद्रविजय आदि बन्धुओं के साथ उसका पुनर्मिलन हुआ। वसुदेव को रोहिणी से राम नामक पुत्र हुआ। कुछ समय के बाद वह शौर्यपुर में वापिस आ गया और वहीं धनुर्वेद का आचार्य बनकर रहा। मगधराज जरासन्ध ने घोषणा कर दी कि जो सिंहपुर के राजा सिंहरथ को जीवित पकड़ कर उसे सौपेगा उसको अपनी कुमारी जीवयशा एवं मनपसन्द एक नगर दिया जाएगा। वसुदेव ने यह कार्य उठा लिया। संग्राम में सिंहरथ को वसुदेव के कंस नामक एक प्रिय शिष्य ने पकड़ लिया। अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार जीवयशा देने के पहले जरासन्ध ने जब अज्ञातकुल कंस के कुल की जाँच की तब ज्ञात हुआ कि वह उग्रसेन का ही पुत्र था। जब वह गर्भ में था तब उसकी जननी को पतिमांस खाने का दोहद हुआ था। पुत्र पितृघातक होगा इस भय से जननी ने जन्मते ही पुत्र को एक काँसे की पेटी में रखकर यमुना में बहा दिया था। एक कलालिन ने पेटी में से बालक को निकालकर अपने पास रख लिया था। कंस नामक यह बालक जब बड़ा हुआ तब उसकी उग्र कलहप्रियता के कारण कलालिन ने उसको घर से निकाल दिया था। तब से धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त करता हुआ वसुदेव के पास ही रहता था और उसका बहुत प्रीतिपात्र बन गया था। इसी समय कंस ने भी पहली बार अपना सही वृत्तान्त जाना तो उसने पिता से अपने वैर का बदला लेने के लिए जरासन्ध से मथुरा नगर माँग लिया। वहाँ जाकर उसने अपने पिता उग्रसेन को परास्त किया और उसको बंदी बनाकर दुर्ग के द्वार के समीप रख दिया। कंस ने वसुदेव को मथुरा बुला लिया और गुरुदक्षिणा के रूप में अपनी बहन देवकी उसको दी।

देवकी के विवाहोत्सव में जीवयशा ने अतिमुक्त मुनि का अपराध किया।^१ फलस्वरूप मुनि ने भविष्यकथन के रूप में कहा कि जिसके विवाह में मस्त होकर नाच रही है। उसके पुत्र से ही तेरे पति का एवं पिता का विनाश होगा। भयभीत जीवयशा से यह बात जानकर कंस ने वसुदेव को इस वचन से प्रतिबद्ध कर दिया कि प्रत्येक प्रसूति के पूर्व देवकी को जाकर कंस के आवास में ठहरना होगा।^२ बाद में कंस का मलिन आशय ज्ञात होने पर वसुदेव ने जाकर अतिमुक्त मुनि से जान लिया कि प्रथम छह पुत्र चरमशरीरी होंगे इसलिए उनकी अपमृत्यु नहीं होगी और सातवाँ पुत्र वासुदेव बनेगा और वह कंस का घातक होगा। इसके बाद देवकी ने तीन बार युगलपुत्रों को जन्म दिया। प्रत्येक बार इन्द्राज्ञा से नैमग देव ने उनको उठाकर भद्रिलनगर के सुदृष्टि श्रेष्ठी की पत्नी अलका^३ के पास रख दिया और अलका के मृतपुत्रों को देवकी के पास रख दिया। इस बात से अज्ञात प्रत्येक बार कंस इन मृतपुत्रों को पछाड़ कर समझता था कि मैंने देवकी के पुत्रों को मार डाला।

देवकी के सातवें पुत्र कृष्ण का जन्म सात मास के गर्भवास के बाद भाद्रपद शुक्ल द्वादशी को रात्रि के समय हुआ।^४ बलराम नवजात शिशु को उठाकर घर से बाहर निकल गया। घनघोर वर्षा से उसकी रक्षा करने के लिए वसुदेव उस पर छत्र धर कर चलता था।^५ नगर के द्वार कृष्ण के चरण-स्पर्श से खुल गए।^६ उसी समय कृष्ण को

१. दीक्षा लेने के पूर्व अतिमुक्त कंस का छोटा भाई था। हपु० के अनुसार जीवयशा ने हँसते-हँसते अतिमुक्त मुनि के सामने देवकी का रजोमलिन वस्त्र प्रदर्शित करके उनकी आशातना की। त्रिषष्टि० के अनुसार मदिरा के प्रभाववश जीवयशा ने अतिमुक्त मुनि को गले लगकर अपने साथ नृत्य करने को निमन्त्रित किया।
२. त्रिषष्टि० के अनुसार जन्मते ही शिशु अपने को सौंप देने का वचन कंस ने वसुदेव से लिया।
३. त्रिषष्टि० में सेठ-सेठानी के नाम नाग और सुलसा हैं।
४. त्रिषष्टि के अनुसार कृष्णजन्म की तिथि और समय भाद्रपद कृष्णाष्टमी और मध्यरात्रि है।
५. त्रिषष्टि० के अनुसार देवकी के परामर्श से वसुदेव कृष्ण को गोकुल ले चला। इसमें कृष्ण पर छत्र धरने का कार्य उनके रक्षक देवता करते हैं।
६. त्रिषष्टि० के अनुसार देवता आंठ दीपिकाओं से मार्ग को प्रकाशित करते थे और उन्हीं ने श्वेत वृषभ का रूप धर कर नगरद्वार खोल दिए थे।

छींक आ गई। यह सुनकर वहीं बन्धन में रखे हुए उग्रसेन ने आशिष्य का उच्चारण किया। वसुदेव ने उसको यह रहस्य गुप्त रखने को कहा। कृष्ण को लेकर वसुदेव और बलराम नगर से बाहर निकल गये। देदीप्यमान शृंगधारी देवी वृषभ उनको मार्ग दिखाता उनके आगे-आगे दौड़ रहा था। यमुना नदी का महाप्रवाह कृष्ण के प्रभाव से विभक्त हो गया। नदी पार करके वसुदेव वृन्दावन पहुँचा और वहाँ पर गोष्ठ में बसे हुए अपने विश्वस्त सेवक नन्दगोप और उसकी पत्नी यशोदा को कृष्ण सौंपा। उनकी नवजात कन्या अपने साथ लेकर वसुदेव और बलराम वापस आए। कंस प्रसूति की खबर पाते ही दौड़ता आया। कन्या जानकर उसकी हत्या तो नहीं की फिर भी उसके भावी पति की ओर से भय होने की आशंका से उसने उसकी नाक को दबा कर चिपटा कर दिया।

गोप-गोपी के लाड़ले कृष्ण ब्रज में वृद्धि पाने लगे। कंस के ज्योतिषी ने बताया कि तुम्हारा शत्रु कहीं पर बड़ा हो रहा है। कंस ने अपनी सहायक देवियों को आदेश दिया कि वे शत्रु को ढूँढ निकालें और उसका नाश करें। इस आदेश से एक देवी ने भीषण पक्षी का रूप रखकर कृष्ण पर आक्रमण किया। कृष्ण ने उसकी चोंच जोर से दबाई तो वह भाग गई।^१ दूसरी देवी पूतानभूत का रूप लेकर अपने विषलिप्त स्तन से कृष्ण को स्तनपान कराने लगी। तब देवों ने कृष्ण के मुख में अतिशय बल रखा। इससे पूतना का स्तनाग्र इतना दब गया कि वह भी चिल्लाती भाग गई। तीसरी शकटरूपधारी पिशाची जब धावा मारती आई तब कृष्ण ने लात लगाकर शकट को तोड़ डाला। कृष्ण के बहुत ऊधमों से तंग आकर यशोदा ने एक बार उनको ऊखली के साथ बाँध दिया। उस समय दो देवियाँ यमलार्जुन का रूप धरकर कृष्ण को मारने आईं। कृष्ण ने दोनों को गिरा दिया। छठवीं वृषभरूप धारी देवी की गरदन मोड़कर उसको भगाया और सातवीं देवी जब कठोर पाषाण वर्षा करने लगी तब कृष्ण ने गोवर्धन गिरि ऊँचा उठाकर सारे गोकुल की रक्षा की।^२

कृष्ण के पराक्रमों की बात सुनकर उनको देखने के लिए देवकी बलराम को साथ लेकर गोपूजन को निमित्त बनाकर गोकुल आई और गोपवेशु में कृष्ण को निहारकर आनन्दित हुई और मथुरा वापस आई। बलराम प्रतिदिन कृष्ण को धनुर्विद्या और अन्य कलाओं की शिक्षा देने के लिए मथुरा से आता था।^३

बालकृष्ण गोपकन्याओं के साथ रास खेलते थे। गोपकन्याएँ कृष्ण के स्पर्शसुख के लिए उत्सुक रहती थीं, किन्तु कृष्ण स्वयं निर्विकार थे।^४ लोग कृष्ण की उपस्थिति में अत्यन्त सुख का और उनके वियोग में अत्यन्त दुःख का अनुभव करते थे।

एक बार शंकित होकर कंस स्वयं कृष्ण को देखने को गोकुल आया। यशोदा ने पहले से ही कृष्ण को दूर वन में कहीं भेज दिया। वहाँ पर भी कृष्ण ने ताडवी नामक पिशाची को मार भगाया एवं मण्डप बनाने के लिए शात्मलि की लकड़ी के अत्यन्त भारी स्तम्भों को अकेले ही उठाया। इससे कृष्ण के सामर्थ्य के विषय में यशोदा निःशंक हो गई और कृष्ण को वापिस लौटा लिया।

मथुरा वापिस आकर कंस ने शत्रु का पता लगाने के लिए ज्योतिषी के कहने पर ऐसी घोषणा कर दी कि जो मेरे पास रखी गई सिंहवाहिनी नागशय्या पर आरूढ़ हो सके, अजितञ्जय धनुष को चढ़ा सके एवं पांचजन्म शंख

१. त्रिषष्टि० के अनुसार ये प्रारम्भ के उपद्रव कंस की ओर से नहीं, अपितु वसुदेव के वैरी शूर्पक विद्याधर की ओर से आए थे। विद्याधर-पुत्री शकुनी शकट के ऊपर बैठकर नीचे रहे कृष्ण को दबाकर मारने का प्रयास करती है और पूतना नामक दूसरी कृष्ण को विषलिप्त स्तन पिलाती है। कृष्ण के रक्षक देवता दोनों का नाश करते हैं।
२. त्रिषष्टि० के अनुसार बालकृष्ण कहीं चला न जाय इसलिए उनको ऊखली के साथ बाँधकर यशोदा कहीं बाहर गई। तब शूर्पक ने पुत्र ने यमलार्जुन बनकर कृष्ण को दबाकर मारना चाहा किन्तु देवताओं ने उसका नाश किया। त्रिषष्टि० में गोवर्धनधारण की बात नहीं है।
३. त्रिषष्टि० के अनुसार कृष्ण के पराक्रमों की बात फैलने से वसुदेव ने कृष्ण की सुरक्षा के लिए बलराम को भी नन्द-यशोदा को सौंप दिया। उससे कृष्ण ने विद्या-कलाएँ सीखीं।



को फूँक सके उसको अपनी मनमानी चीज प्रदान की जाएगी। अनेक राजा ये कार्य सिद्ध करने में निष्फल हुए। एक बार जीवयशा का भाई भानु कृष्ण का बल देखकर उनको मथुरा ले गया और वहाँ कृष्ण ने तीनों पराक्रम सिद्ध किए।^१ इससे कंस की शंका प्रबल हो गई। किन्तु बलराम ने शीघ्र ही कृष्ण को ब्रज भेज दिया।

कृष्ण का विनाश करने के लिए कंस ने गोप लोगों को आदेश दिया कि यमुना के हृद में से कमल लाकर भेंट करे। इस हृद में भयंकर कालियनाग रहता था। कृष्ण ने हृद में प्रवेश करके कालिय का मर्दन किया और वे कमल लेकर बाहर आए।^२ जब कंस को कमल भेंट किये गये तब उसने नन्द के पुत्र के सहित सभी गोपकुमारों को मल्लयुद्ध के लिए उपस्थित होने का आदेश दिया। अपने बहुत से मल्लों को उसने युद्ध के लिए तैयार रखा। कंस का मलिन आशय जान कर वसुदेव ने भी मिलन के निमित्त से अपने नव भाइयों को मथुरा में बुला लिया।

बलराम गोकुल गये और कृष्ण को अपने सही माता-पिता, कुल आदि घटनाओं से परिचित किया। इससे हृष्ट होकर कृष्ण कंस का संहार करने को उत्सुक हो उठे। दोनों भाई मल्लवेश धारण करके मथुरा की ओर चले। मार्ग में कंस से अनुरक्त तीन असुरों ने क्रमशः नाग के, गधे के और अश्व के रूप में उनको रोकने का प्रयास किया। कृष्ण ने तीनों का नाश कर दिया।^३ मथुरा के नगरद्वार पर कृष्ण और बलराम जब आ पहुँचे तब इनके ऊपर कंस के आदेश से चम्पक और पादाभर^४ नामक दो मदमत्त हाथी छोड़े गये। बलराम ने चम्पक को और कृष्ण ने पादाभर को दन्त उखाड़ कर मार डाला।

नगरप्रवेश करके वे अखाड़े में आये। बलराम ने इशारे से कृष्ण को वसुदेव, अन्य दशार्ह, कंस आदि की पहचान कराई। कंस ने चाणूर और मुष्टिक इन दो प्रचण्ड मल्लों को कृष्ण के सामने भेजा। किन्तु कृष्ण में एक सहस्र सिंह का और बलराम में एक सहस्र हाथी का बल था। कृष्ण ने चाणूर को भींच कर मार डाला और बलराम ने मुष्टिक के प्राण मुष्टिप्रहार से हर लिए। इतने में स्वयं कंस तीक्ष्ण खड्ग लेकर कृष्ण के सामने आया। कृष्ण ने खड्ग छीन लिया। कंस को पृथ्वी पर पटक दिया। उसे पैरों से पकड़ कर पत्थर पर पछाड़ कर मार डाला^५ और एक प्रचण्ड अट्टहास किया। आक्रमण करने को खड़ी हुई कंस की सेना को बलराम ने मंच का खम्भा उखाड़ कर प्रहार करके भगा दिया। कृष्ण पिता और स्वजनों से मिले। उग्रसेन को बन्धनमुक्त किया और उसको मथुरा के

१. त्रिषष्टि० के अनुसार जो शारंग मनुष्य चढ़ा सके उसको अपनी बहन सत्यभामा देने की घोषणा कंस ने की और इस कार्य के लिए कृष्ण को मथुरा ले जाने वाला कृष्ण का ही सौतेला भाई अनाधृष्टि था।
२. त्रिषष्टि० में कालियमर्दन का और कमल लाने के प्रसंग कंस की मल्लयुद्ध घोषणा के बाद आते हैं। त्रिषष्टि० के अनुसार कंस गोपों को मल्लयुद्ध के लिए आने का कोई आदेश नहीं भेजता है। उसने जो मल्लयुद्ध के उत्सव का प्रबन्ध किया था उसमें सम्मिलित होने के लिए कृष्ण और बलराम कौतुकवश स्वेच्छा से जाते हैं। जाने के पहले जब कृष्ण स्नान के लिए यमुना में प्रवेश करते हैं तब कंस का मित्र कालिय डसने को आता है। तब कृष्ण उसको नाथ कर उस पर आरूढ़ होकर उसे खूब घुमाते हैं और निर्जीव सा करके छोड़ देते हैं।
३. त्रिषष्टि० में सर्पशय्या पर आरोहण और कालियमर्दन इन पराक्रमों के पहले जबकि कृष्ण ग्यारह साल के थे तब ये पराक्रम करने की बात है। त्रिषष्टि० के अनुसार कृष्ण की कसौटी के लिए ज्योतिषी के कहने पर कंस अरिष्ट नामक वृषभ को, केशी नामक अश्व को, एक खर को और एक मेष को कृष्ण की ओर भेजता है। इन सबको कृष्ण मार डालते हैं। ज्योतिषी ने कंस को कहा था कि जो इनको मारेगा वही कालिय का मर्दन करेगा, मल्लों का नाश करेगा और कंस का भी घात करेगा।
४. त्रिषष्टि० में 'पादाभर' के स्थान पर 'पद्मोत्तर' ऐसा नाम है।
५. त्रिषष्टि० के अनुसार प्रथम कंस कृष्ण और बलराम को मार डालने का अपने सैनिकों को आदेश देता है। तब कृष्ण कूद कर मंच पर पहुँचते हैं और केशों से खींच कर कंस को पटकते हैं। बाद में चरणप्रहार से उसका सिर कुचल कर उसको मण्डप के बाहर फेंक देते हैं।

सिंहासन पर फिर से बैठाया। जीवयशा जरासन्ध के पास जा पहुँची। कृष्ण ने विद्याधरकुमारी सत्यभामा^१ के साथ और बलराम ने रेवती के साथ विवाह किया।

कंसवध का बदला लेने के लिए जरासन्ध ने अपने पुत्र कालयवन को बड़ी सेना के साथ भेजा^२। सत्रह बार यादवों के साथ युद्ध करके अन्त में वह मारा गया। तत्पश्चात् जरासन्ध का भाई अपराजित तीन सौ छियालिस बार युद्ध करके कृष्ण के बाणों मारा गया। तब प्रचण्ड सेना लेकर स्वयं जरासन्ध ने मथुरा की ओर प्रयाण किया। इसके भय से अठारह कोटि यादव मथुरा छोड़ कर पश्चिम दिशा की ओर चल पड़े। जरासन्ध ने उनका पीछा किया। विन्ध्याचल के पास जब जरासन्ध आया तब कृष्ण की सहायक देवियों ने अनेक चिताएँ रचीं और वृद्धा के रूप लेकर उन्होंने जरासन्ध को समझा दिया कि उसके डर से भागते हुए यादव कहीं शरण न पाने से सभी जलकर मर गए। इस बात को सही मानकर जरासन्ध वापिस लौटा। जब यादव समुद्र के निकट पहुँचे तब कृष्ण और बलराम की तपश्चर्या से प्रभावित इन्द्र ने गौतम देव को भेजा। उसने समुद्र को दूर हटाया। वहाँ पर समुद्रविजय के पुत्र एवं भावी तीर्थंकर नेमिनाथ की भक्ति से प्रेरित कुबेर ने द्वारका नगरी का निर्माण किया। उसने बारह योजन लम्बी और नव योजन चौड़ी इस वज्रमय कोट से युक्त नगरी में सभी के लिए योग्य आवास बनाए और कृष्ण को अनेक दिव्य शस्त्रास्त्र, रथ आदि में भेंट किए।

यहाँ पर पूर्व-कृष्णचरित्र समाप्त होता है। उत्तर-कृष्णचरित्र के मुख्यतः निम्न विषय थे :—

हविमणीहरण, शाम्ब-प्रद्युम्न उत्पत्ति, जाम्बवतीपरिणय, कुरुवंशोत्पत्ति, द्रौपदीलाभ, कीचकवध, प्रद्युम्नसमागम, शाम्बविवाह, जरासन्ध के साथ युद्ध एवं पाण्डव-कौरव युद्ध, कृष्ण का विजयोत्सव, द्रौपदीहरण, दक्षिणमथुरा-स्थापना, नेमिनिष्क्रमण, केवलज्ञानप्राप्ति, धर्मोपदेश, विहार, द्वारावतीविनाश, कृष्ण की मृत्यु, बलराम की तपश्चर्या, पाण्डवों की प्रव्रज्या और नेमिनिर्वाण।

भिन्न-भिन्न अपभ्रंश कृतियों में उपर्युक्त रूपरेखा से कतिपय बातों में अन्तर पाया जाता है। यथाप्रसंग उनका निर्देश किया जायगा।

अब हम कृष्णविषयक विभिन्न अपभ्रंश रचनाओं का परिचय करें।

अपभ्रंश साहित्य में अनेक कवियों की कृष्णविषयक रचनाएँ हैं। जैन कवियों में नेमिनाथ का चरित्र अत्यन्त रूढ़ और प्रिय विषय था और कृष्णचरित्र उसी का एक अंश होने से अपभ्रंश में कृष्णकाव्यों की कोई कमी नहीं है। यहाँ पर एक सामान्य परिचय देने की दृष्टि से कुछ प्रमुख अपभ्रंश कवियों की कृष्णविषयक रचनाओं का विवेचन और कुछ विशिष्ट अंश प्रस्तुत किया जाता है। इनमें स्वयम्भू, पुष्पदन्त, हरिभद्र और धवल की रचनाएँ समाविष्ट हैं। पुष्पदन्त की कृति के सिवा सभी कृतियाँ अभी अप्रकाशित हैं। हस्तप्रतियों के आधार पर उनका अल्पाधिक परिचय यहाँ पर दिया जा रहा है।

स्वयम्भू के पूर्व

नवीं शताब्दी के अपभ्रंश महाकवि स्वयम्भू के पूर्व की कृष्णविषयक अपभ्रंश रचनाओं के बारे में हमारे पास जो ज्ञातव्य है वह अत्यन्त स्वल्प और चूटक है। उसके लिए जो आधार मिलते हैं वे ये हैं—स्वयम्भूकृत छन्दोग्रन्थ 'स्वयम्भूच्छन्द' में दिए गए कुछ उद्धरण और नाम; भोजकृत 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में प्राप्त एकाध उद्धरण, हेमचन्द्रकृत

१. त्रिषष्टि० के अनुसार सत्यभामा कंस की बहन थी।

२. त्रिषष्टि० के अनुसार पहले जरासन्ध समुद्रविजय पर कृष्ण और बलराम को उसको सौंप देने का आदेश भेजता है। समुद्रविजय इस आदेश का तिरस्कार करता है। बाद में ज्योतिषी की सलाह से यादव मथुरा छोड़कर चल देते हैं। जरासन्ध का पुत्र काल यादवों को मारने की प्रतिज्ञा करके अपने भाई यवन और सहदेव को साथ लेकर यादवों का पीछा करता है। रक्षक देवियों द्वारा दिए गए यादवों के अग्निप्रवेश के समाचार सही मानकर वह प्रतिज्ञा की पूर्ति के लिए स्वयं अग्निप्रवेश करता है।



‘सिद्धहेमशब्दानुशासन’ के अपभ्रंश विभाग में दिए गए तीन उद्धरण और कुछ अपभ्रंश कृतियों में किया हुआ कुछ कवियों का नामनिर्देश।

स्वयम्भू के पुरोगामियों में चतुर्मुख स्वयम्भू के ही समान समर्थ महाकवि था और सम्भवतः वह जैनेतर था। उसने एक रामायणविषयक और एक महाभारतविषयक ऐसे कम से कम दो अपभ्रंश महाकाव्यों की रचना की थी—यह मानने के लिए हमारे पास पर्याप्त आधार हैं।^१ उसके महाभारत-विषयक काव्य में कृष्णचरित्र का भी कुछ अंश होना अनिवार्य था। कृष्ण के निर्देश वाले दो-तीन उद्धरण ऐसे हैं जिनको हम अनुमान से चतुर्मुख की कृतियों में से लिए हुए मान सकते हैं। किन्तु इससे हम चतुर्मुख की काव्यशक्ति का थोड़ा सा भी संकेत पाने में नितान्त असमर्थ हैं।^२

चतुर्मुख के सिवा स्वयम्भू का एक और ख्यातनाम पूर्ववर्ती था। उसका नाम था गोविन्द। स्वयम्भूच्छन्द में दिये गये उसके उद्धरण हमारे लिए अमूल्य हैं। गोविन्द के जो छह छन्द दिए गये हैं वे कृष्ण के बालचरितविषयक किसी काव्य में से लिए हुए जान पड़ते हैं। गोविन्द का नामनिर्देश अपभ्रंश की मूर्धन्य कवित्रिपुटी चतुर्मुख, स्वयम्भू और पुष्पदन्त के निर्देश के साथ-साथ चौदहवीं शताब्दी तक होता रहा है। चौदहवीं शताब्दी के कवि धनपाल ने जो श्वेताम्बर कवीन्द्र गोविन्द को सनत्कुमारचरित का कर्ता बताया है वह और स्वयम्भू से निर्दिष्ट कवि गोविन्द दोनों का अभिन्न होना पूरा सम्भव है। स्वयम्भू द्वारा उद्धृत किये हुए गोविन्द के छन्द उसके हरिवंशविषयक या नेमिनाथ विषयक काव्य में से लिए हुए जान पड़ते हैं। अनुमान है कि इस पूरे काव्य की रचना केवल रड्डा नामक द्विभंगी छन्द में हुई होगी। और सम्भवतः उसी काव्य से प्रेरणा और निर्दर्शन प्राप्त करने के बाद हरिभद्र ने रड्डा छन्द में ही अपने अपभ्रंश काव्य ‘नेमिनाथचरित’ की रचना की थी।

‘स्वयम्भूच्छन्द’ में उद्धृत गोविन्द के सभी छन्द यद्यपि मात्रिक हैं तथापि ये मूल में रड्डाओं के पूर्वघटक के रूप में रहे होंगे, ऐसा जान पड़ता है। यह अनुमान हम हरिभद्र के ‘नेमिनाथचरित’ का आधार लेकर लगा सकते हैं एवं हेमचन्द्र के ‘सिद्धहेम’ के कुछ अपभ्रंश उद्धरणों में से भी हम कुछ संकेत निकाल सकते हैं।

‘स्वयम्भूच्छन्द’ में गोविन्द के लिए गए मत्तविलासिनी नामक मात्रा छन्द का उदाहरण जैन परम्परा के कृष्ण-बालचरित्र का एक सुप्रसिद्ध प्रसंग विषयक है। यह प्रसंग है कालियनाग के निवासस्थान बने हुए कालिन्दी हृद से कमल निकाल कर भेंट करने का आदेश जो नन्द को कंस से दिया गया था। पद्य इस प्रकार है—

एहू विसमउ सुट्टु आएसु

माणंतिउ माणुसहो विट्ठीविसु सणु कालियउ ।

कंसु वि मारेइ धुउ कहि गम्मउ काइ किज्जउ ॥ (स्वच्छ० ४-१०-१)

‘यह आदेश अतीव विषम था। एक ओर था मनुष्य के लिए प्राणघातक दृष्टिविष कालिय सर्प और दूसरी ओर था (आदेश के अनादर से) कंस से अवश्य प्राप्तव्य मृत्युदण्ड—तो अब कहाँ जाएँ और क्या करें।

गोविन्द का दूसरा पद्य जो मत्तकरिणी मात्रा छन्द में रचा हुआ है राधा की ओर कृष्ण का प्रेमातिरेक प्रकट करता है। हेमचन्द्र के ‘सिद्धहेम’ में भी यह उद्धृत हुआ है (देखो ८-४-४२२, ५) और वहीं कुछ अंश में प्राचीनतर पाठ

१. विशेष के लिए देखिए इस व्याख्याता का लेख—‘Chaturmukha, one of the earliest Apabhramsa epic Poets’, Journal of the Oriental Institute, Baroda, ग्रन्थ ७, अंक ३, मार्च १९५८, पृ० २१४-२२४।

२. स्वयम्भूच्छन्द ६-७५-१ में कृष्ण के आगमन के समाचार से आश्वस्त होकर मथुरा के पौरजनों ने धवल ध्वज फहराए और इस तरह अपना हृदयभाव व्यक्त किया ऐसा अभिप्राय है। ६-१२२०-१ में कृप, कर्ण, और कर्लिगराज को एवं अन्य सुभटों को पराजित करके अर्जुन कृष्ण को अयद्रथ का पता पूछता है, ऐसा अभिप्राय है। इनके अलावा ३-८-१ और ६-३५-१ में अर्जुन का निर्देश तो है, उसके साथ कई अन्य का भी उल्लेख है, किन्तु कृष्ण का नहीं। और मुख्य बात तो यह है कि ये चतुर्मुख के ही मानने के लिए कोई निश्चित आधार नहीं है।

सुरक्षित है। इसके अतिरिक्त 'सिद्धहेम' (८-४-४२०, २) में जो दोहा उद्धृत है वह भी मेरी समझ में बहुत करके गोविन्द के ही उसी काव्य के ऐसे ही सन्दर्भ में रहे हुए किसी छन्द का उत्तरांश है। 'स्वयम्भूच्छन्द' में दिया गया गोविन्दकृत वह दूसरा छन्द इस प्रकार है (कुछ अंश हेमचन्द्र वाले पाठ से लिया गया है ; टिप्पणी में पाठान्तर दिए गए हैं)—

एकमेकउ^१ जइ वि जोएदि^२

हरि सुट्ठु^३ वि आअरेण^४ तो वि द्रेहि जहि कहि वि राही ।

को सक्कइ संवरेवि दइड^५ नयण^६ नेहे^७ पलुट्टा^८ ॥ (स्वच्छ० ४-१०-२)

“एक-एक गोपी की ओर हरि यद्यपि पूरे आदर से देख रहे हैं तथापि उनकी दृष्टि वहीं जाती है जहाँ कहीं राधा होती है। स्नेह से झुके हुए नयनों का संवरण कौन कर सकता है भला ?”

इसी भाव से संलग्न 'सिद्धहेम' में उद्धृत दोहा इस प्रकार है—

हरि नच्चाविउ प्रंगणइ विम्हइ पाडिउ लोउ ।

एवंहि राह-पओहराहं जं भावइ तं होउ ॥

‘हरि को अपने घर के प्रांगण में नचा कर राधा ने लोगों को विस्मय में डाल दिया। अब तो राधा के पयोधरों का जो होना हो सो हो।’

‘स्वयम्भूच्छन्द’ में उद्धृत बहुरूपा मात्रा के उदाहरण में कृष्णविरह में तड़पती हुई गोपी का वर्णन है। पद्य इस प्रकार है—

देइ पाली थणहं पम्भारे

तोडेपिणु पालिणिदलु हरिविओअसंतावे तत्ती ।

फलु अण्णुहि पावियउ करउ दइअ जं किपि रुच्चइ ॥ (स्वच्छ० ४-११-१)

‘कृष्णवियोग के सन्तान से तप्त गोपी उन्नत स्तनप्रदेश पर नलिनीदल तोड़कर रखती है। उस मुग्धा ने अपनी करनी का फल पाया। अब दैव चाहे सो करे।’

हेमचन्द्र के ‘त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र’ ८-५ में किया गया वर्णन इससे तुलनीय है—गोपियों के गीत के साथ बालकृष्ण नृत्य करते थे और बलराम ताल बजाते थे।

मानो इससे ही संलग्न हो ऐसा मत्तबालिका मात्रा का उदाहरण है—

कमलकुमुआण एक उप्पत्ति

ससि तो वि कुमुआअरहं देह सोक्खु कमलहं दिवाअरु ।

पाविज्जइ अवस फलु जेण जस्स पासे ठवेइउ ॥ (स्वच्छ० ४-१२-१)

‘कमल और कुमुद दोनों का प्रभवस्थान एक ही होते हुए भी कुमुदों के लिए चन्द्र एवं कमलों के लिए सूर्य सुखदाता है। जिसने जिसके पास धरोहर रखी हो उसको उसी से अपने कर्मफल प्राप्त होते हैं।’^१

मत्तमधुकरी प्रकार की मात्रा का उदाहरण सम्भवतः देवकी कृष्ण को देखने को आई उसी समय के गोकुल वर्णन से सम्बन्धित है। मूल और अनुवाद इस प्रकार है—

ठामठामहिं घाससंतुट्ठ

रत्तिहिं परिसंठिआ रोमथएवसचलिअगंडआ ।

दीसहिं धवलुज्जला जोण्हाणिहाणा इव गोहणा ॥ (स्वच्छ० ४-१३-५)

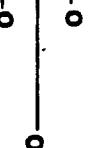
पाठान्तर : १. सव्व गोविउ, २. जोएइ, ३. सुट्ठु सव्वायरेण, ४. देइ दिट्ठि, ५. डड्ठ ६. नयणा, ७. नेहिं

८. पलोट्टउ

१. रहीम के प्रसिद्ध दोहे का भाव यहाँ पर तुलनीय है—

जल में बसे कमोदनी चंदा बसे अकास ।

जो जाहि को भावता सो ताहि के पास ॥



‘स्थान-स्थान पर रात्रि में विश्रान्ति के लिए ठहरे हुए और जुगाली में जबड़े हिलाते हुए गोधन दिखाई देते हैं—मानो ज्योत्स्ना के धवलोज्ज्वल पुंज ।’

इन पद्यों से गोविन्द कवि की अभिव्यक्ति की सहजता का तथा उसकी प्रकृतिचित्रण और भावचित्रण की शक्ति का हमें थोड़ा सा परिचय मिल जाता है। यह उल्लेखनीय है कि बाद के बालकृष्ण की क्रीड़ाओं के जैन कवियों के वर्णन में कहीं गोपियों के विरह की तथा राधा सम्बन्धित प्रणयचेष्टा की बात नहीं है। दूसरी बात यह है कि मात्रा या रड्डा जैसा जटिल छन्द भी दीर्घ कथात्मक वस्तु के निरूपण के लिए कितना सुयोग्य एवं लयबद्ध हो सकता है यह बात गोविन्द ने अपने सफल प्रयोगों से सिद्ध की। आगे चलकर हरिभद्र से इसी का समर्थन किया जाएगा। और छोटी रचनाओं में तो रड्डा का प्रचलन सोलहवीं शताब्दी तक रहा।^१

स्वयम्भू

नवीं शताब्दी के महाकवि स्वयम्भू के दो अपभ्रंश महाकाव्यों में से एक था ‘हरिवंशपुराण’ या ‘अरिष्टनेमिचरित्र’ (‘रिट्ठणेमिचरिउ’)। यह सभी उपलब्ध कृतियों में प्राचीनतम अपभ्रंश कृष्णकाव्य है। अठारह सहस्र श्लोक जितने बृहत् विस्तारयुक्त इस महाकाव्य के ११२ सन्धियों में से ६६ सन्धि स्वयम्भू विरचित हैं। शेष का कर्तृत्व स्वयम्भू के पुत्र त्रिभुवन का और पन्द्रहवीं शताब्दी के यशःकीर्ति भट्टारक का है। हरिवंश के चार काण्ड इस प्रकार हैं—यादव-काण्ड (१३ सन्धियाँ), कुरूकाण्ड (१६ सन्धियाँ), युद्धकाण्ड (६० सन्धियाँ), उत्तरकाण्ड (२० सन्धियाँ)। कृष्णजन्म से लेकर द्वारावती स्थापन तक का वृत्तान्त यादवकाण्ड के चार से लेकर आठ सन्धियों तक चलता है।

स्वयम्भू ने कुछ अंशों में जिनसेन वाले कथानक का तो अन्यत्र वैदिक परम्परा वाले कथानक का अनुसरण किया है।^२

कृष्णजन्म का प्रसंग स्वयम्भू ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है (सन्धि ४, कडवक १२)—

भाद्रपद शुक्ल द्वादशी के दिन स्वजनों के अभिमान को प्रज्वलित करते हुए असुरविमर्दन जनार्दन का (मानों कंस के मस्तक शूल का) जन्म हुआ। जो सौ सिंहों के पराक्रम से युक्त और अतुलबल थे, जिनका वक्षःस्थल श्रीवत्स से लाञ्छित था, जो शुभ लक्षणों से अलंकृत एवं एक सौ साठ नामों से युक्त थे और जो अपनी देह प्रभा से आवास को उज्ज्वल करते थे उन मधुमथन को वसुदेव को उठाया। बलदेव ने ऊपर छत्र रखते हुए उनकी बरसात से रक्षा की। नारायण के चरणांगुष्ठ की टक्कर से प्रतौली के द्वार खुल गए। दीपक को धारण किये हुए एक वृषभ उनके आगे-आगे चलता था। उनके आते ही यमुनाजल दो भागों में विभक्त हो गया। हरि यशोदा को सौंपे गए। उसकी पुत्री को बदले में लेकर हलधर और वसुदेव कृतार्थ हुए। गोपबालिका लाकर उन्होंने कंस को दे दी। मगर विन्ध्याचल का अधिप यक्ष उसको विन्ध्य में ले गया।

□

१. ‘सिद्धहेम’ ८-४-३६१ इस प्रकार है—

इत्तञ् ब्रौप्पिणु सउणि ट्ठिउ पुणु दूसासणु ब्रौप्पि ।

तो हउं जाणउं एहो हरि जइ महु अग्गइ ब्रौप्पि ॥

इतना कहकर शकुनि रह गया। और बाद में दुःशासन ने यह कहा कि मेरे सामने आकर जब बोले तब मैं जानूँ कि यही हरि है। इसमें अर्थ की कुछ अस्पष्टता होते हुए भी इतनी बात स्पष्ट है कि प्रसंग कृष्णविष्टि का है। यह पद्य भी शायद गोविन्द की वैसी अन्य कोई महाभारत विषयक रचना में से लिया गया है।

२. मल्लवेश में मथुरा पहुँचने पर मार्ग में कृष्ण धोबी को लूट लेते हैं और सैरन्धी से विलेपन बलजोरी से लेकर गोपसखाओं में बाँट देते हैं। दो प्रसंग हिन्दू परम्परा की ही कृष्णकथा में प्राप्त होते हैं और ये स्वयम्भू में भी हैं।